नाटक

"काव्येषु नाटक रम्यम्" इस संस्कृत के वाक्य के अनुसार हम कह सकते है कि नाटक काव्यकला का सर्वश्रेष्ठ अंग है क्योंकि नाटक की प्रभावशक्ति साहित्य के अन्य अंगो की अपेक्षा स्थिर, गहरी और व्यापक होती है।

काव्य के प्रमुख दो भेद किए जाते हैं –
1] श्रव्य काव्य
2] दृश्य काव्य

श्रव्य काव्य में कल्चना शक्ति से शब्दों द्वारा मानसिक चित्र उपस्थित किया जाता है। दृश्य काव्य में कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया जाता| नाटक हमारे यथार्थ जीवन से निकट संबंध रखता है। (दृश्य काव्य को ही नाटक कहा जाता है।) परिणाम स्वरूप उसमें हम वास्तविकता और जीवन के यथार्थ का अनुभव प्राप्त करते है। इसलिए तो नाटक सामान्य लोगों के दिल पर भी हावी हो जाता है। नाटक को बच्चों के लेकर बूढ़ों तक अमीर-गरीब, राव-रंक, स्त्री-पुरुष सभी बड़े चाव से देखते है। इसलिए तो नाटक एक अंत्यंत लोकप्रिय विधा है। नाटक का विकास प्राचीन काल से होता आया है ।
संस्कृत में नाटक के लिए रूपक शब्द प्रचलित था। और पाश्चात्य साहित्य में ड्रामा (drama) है।

व्युत्पत्ति :--
नाटक की व्यत्पत्ति के बारे में धनंजय कहते है "अवस्थानुकृतिः नाट्यम" अर्थात ' अवस्था की अनुभूति को नाटक कहते है।"
पाणिनी के मतानुसार नाटक शब्द की व्युत्पत्ति 'नट' धातु से हुई है।नट शब्द का अर्थ है- "अभिनय करना" नाट्य दर्पणकार रामचंद्र नाटक की व्युत्पत्ति 'नाट' धातु से मानते हैं । इस प्रकार नाटक की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद दिखाई देते है।

परिभाषाएँ :-- नाटक की व्युत्पत्ति के बारे में जिस प्रकार विद्वानों में मतभेद दिखाई देते है। उसी प्रकार परिभाषाओं के बारे में भी मतभेद दिखाई देते है। हम भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने दी हुई परिभाषाओं का स्थूल रूप से विश्लेषण करेंगे।
1 भरतमुनि :-- - अपने नाट्यशास्त्र नामक ग्रंथ में भरतमुनि नाटक की परिभाषा देते है–
" जिसमें स्वभावतः लोगों का सुख-दुःख निहित होता है तथा अंगों द्वारा अभिनय किया जाता है उसी को नाटक कहते है।"
2 अरिस्टाटल Aristotle :-- " शोभांतिका मूलतः अभिनय की अनुकृति है।"

3 सिकेरो cicerow :-- "नाटक जविन की प्रतिकृति है, सामाजिक रीतिरिवाजों का दर्पण है एवं सत्यता का प्रतिबिंब है"
4 व्हिक्टर हुगो victor Hugo):-- "नाटक एक दर्पण है जिसमें हमें समाज प्रतिबिंबित होता हुआ दिखाई देता है।"

नाटक के तत्व :-- परिभाषाओं को देखने के बाद नाटक का विश्लेषण करके पाश्यात्य तथा भारतीय आचार्यों ने नाटक के कुछ तत्व निश्चित किए है। भारतीय विद्वानोने प्रमुख तीन तत्व माने है-
1 वस्तु
2 नेता
3 रस
लेकिन पाश्चात्य विद्वानों ने सात तत्वों को स्वीकार किया है—

1 कथावस्तु
2 पात्र एवं चरित्र चित्रण
3 कथोपकथन
4 देशकाल और वा
5 भाषाशैली
6 उद्देश्य
7 अभिनेता

1 कथावस्तु :-- नाटक की कहानी को कथावस्तु कहते है। नाटक की कहानी को कथावस्तु कहते है। नाटक की कथावस्तु सरल और अभिनयानुकूल होनी चाहिए। उपन्यास की तरह उसमें अधिक सामग्री नहीं होनी चाहिए । प्रासांगिक वर्णन भी नहीं होने चाहिए नाटक की कथावस्तु में रोचक प्रसंगों का चुनाव अनिवार्य है। नाटककार अभिनय के लिए निश्चित समय का ध्यान रखते हुए मर्यादिओं का पालन कर करते हुए चलता है। आनाटककार करते हुए चलता है। इसलिए कथावस्तु आधिक विस्तारित नहीं होती। केवल तीन-चार अंकों में पूरा आभिनय हो सके इसके बारे सतर्क रहकर नाटककार कथावस्तु का संघटन करता है। कथावस्तु को फल नायक को मिलता है । फल की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद किए जाते है
1 आधिकारिक कथावस्तु -- आधिकारिक कथावस्तु मुख्य होती है। जो कथा नाटक के आरंभ से अंत तक प्रत्यक्ष नायक से संबंध रखती है उसे आधिकारिक कथावस्तु कहते है ।
2 प्रासांगिक कथावस्तु :-- प्रासांगिक कथावस्तु गौण होती है। इसका संबंध नायक नायिका से न होकर अन्य गौण पात्रों से होता है । इसका प्रमुख कार्य है मुख्य कथा को विकसित करना तथा उसका कार्य बढ़ाने का|"

अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद किए गए है---

1 दृश्य – दृश्य काव्य में घटनाओं का इंगमंच पर अभिनय दिखाई देता है।

2 सुच्च – सुच्च में रंगमंच पर घटित न होनेवाली घटनाओं की केवल सूचना दी जाती है।

विषय और वस्तु की दृष्टि से कथावस्तु तीन प्रकार की मानी गई है–
1 प्रख्यात – कथा का आधार इतिहास, पुराण, लोकप्रसिद्ध घटना होती है।

2 उत्पाद्य – कथा का आधार कवि कल्पना होती है।
उत्पाद्य कथा का आधार कवि कल्पना होती है।

3 मिश्र -- इसमे इतिहास और कल्पना का का मिश्रण रहता है।

2 पात्र एवं चरित्र -चित्रण -- पात्र घटनाओं में प्रमुख रहते है। नाटक में जो पात्र प्रमुख रहता है वह नायक कहलाता है। नाटक को फल की ओर ले जाने का काम नायक ही करता है। नाट्यशास्त्र में नायक को सर्वगुणसंपन्न माना जाता है। उसे विनीत, मधूर त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलनेवाला, लोकप्रिय, पवित्र, शूर तेजस्वी, बुद्धिमानी, उत्साही और धार्मिक होना चाहिए। परंतु आज-कल आदमी का दृष्टिकोण कुछ बदला हुआ दिखता है। ऊपर लिखे हुए गुण आधुनिक नायकों में आवश्यक नहीं समझे जाते । साधारण से साधारण और बुरे से बुरा से व्यक्ति भी नाटक का नायक हो सकता है। संस्कृत के आचार्यों ने नायकों के चार भेद किए है--

1 धीरोदात्त – इस प्रकार का नायक अत्यंत गंभीर, क्षमावान अहंकार से रहित तथा दृढ़वती होता है। आत्मसम्मानता उदात्तता, स्वाभिमानी आदि गुणों से युक्त होता है।

इस प्रकार का नायक सभी नायकों में सर्वश्रेष्ठ तथा उदार चारित्रवाला होता है। उपरलिखित गुणों में से सभी उसमें पाये जाते हैं। इस प्रकार के नायकों के उदाहरण श्रीराम तथा युधिष्ठर हैं।
2 धीरललित :-- यह नायक कोमल स्वभाव का, कलावान, सुख को चाहनेवाला, शृंगार प्रिय, ललित गुणों की प्रधानता इस नाएक में होती है। कालिदास का दुश्यंत इसी कोटि का नायक है।
3 धीरप्रशांत :-- यह नायक संतोषी शांतिप्रिय होता है। इसलिए ऐसा नायक ब्राह्मण या वैश्य होता है। क्षत्रिय नहीं । 'मालती माधव' का माधव' और मृच्छकटिक का चारुदत्त इसका सुंदर उदाहरण है।
4 धीरोद्धत :-- यह नायक मायावी उग्र ,चपल, अहंकार और दर्प से पूर्ण तथा आत्मश्लाघी होता है । इसे अपने बल तथा वैभव का बड़ा गर्व रहता है। साहित्य में इस प्रकार के नायक बहुत कम मिलते हैं। गौण प्रात्रों तथा प्रतिनायको में अवश्य ही इस प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। रावण,परशुराम भीमसेनादि इसके उदाहरण है।

नाटक में नायक के समान नायिका का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। नायिका के वैशिष्टयों के आधार पर भी भेद किए जाते हैं और कार्य से आधार पर भी भेद किए जाते है । नायिका तीन प्रकार की होती है।
1 स्वकीया – नायक की पत्नी होती है।
2 परकीया – नायिका की पत्नी न होकर किसी अन्य की पत्नी होती है।
3 सामान्या – गणिका अथवा वेश्या होती है।
नाटक में नायक और नायिका के अन्य सहायक भी होते है जो कथा बढ़ाने में मदत करते है । उदा. प्रतिनायक, खलनायक, विदुषक, नर्तक आदि इन तमाम पात्रों में उनका चरित्र चित्रण वार्तालाप या कथोपकथन से किया जाता है। इसलिए पात्रों का चरित्र करते समय संक्षिप्तता सुसम्बद्धता और तटस्थता का ध्यान रखना आवश्यक होता है ।

3 कथोपकथन :-- पात्रों के आपस में चले वार्तालाप को कथोपकथन कहा जाता है । नाटक का पूरा करिश्मा कथोपकथन पर ही निर्भर रहता है। इसलिए पाश्चात्य विमान बोल्ट ने लिखा है - "A play is its dialogue"
कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों के चरित, घटना, पात्रों की मनस्थितियों पर प्रकाश डाला जा सकता है। अतः कथोपकथन में प्रसंग, परिस्थिति और पात्रों की विशेषता प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। निरर्थका वार्तालाप के लिए नाटकों में कोई स्थान नहीं रहता अर्थात कथोपकथन की आवश्यकता से अधिक लंबे और अस्वाभाविक नहीं होने चाहिए । छोटे-छोटे प्रवाहपूर्ण और वाकचातुर्य से युक्त संवाद ही नाटक को प्रभावपूर्ण बनाने में सफल हो जाते है। भारतीय आचार्यों ने कथोपकथन के तीन भेद किए है –
सर्वश्राव्य :-- इस प्रकार के कथोपकथन सभी सुन सकते हैं।

2 नियतश्राव्य :-- इस प्रकार के कथोपकथन रंगमंच पर उपस्थित सभी पात्रों को नहीं सुनवाये जाते बल्कि निश्चित पात्रों को ही सुनवाये जाते है।

3 स्वगत कथन :-- इस प्रकार के कथोपकथन पात्र अपने आप से ही कहते है। मन में छिपे समस्याओं को प्रकट करने के लिए या हृदय की भावना प्रकट करने के लिए स्वगत कथन का उपयोग किया जाता है। लेकिन आज कल ऐक स्वगन कथन को महत्व नहीं दिया जाता

4 देशकाल और वातावरण :-- उपन्यास में जिस प्रकार देशकाल और वातावरण आवश्यक होता है उसी प्रकार नाटक में भी आवश्यक होता है। पात्रों का व्यावक्तित्व और वास्तविकता इसी पर आधारित होती है। नाटक में स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रों की वेशभूषा, परिस्थितियाँ, आचार-विचार, खान-पान, व्यवहार, आचारण आदि बाते देश के अनुरूप होने चाहिए। नाटक की कथावस्तु जिस काल की है उस काल के अनुसार, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, पारिस्थिति में दिखाई जाएगी तो वह नाटक सजीव बन पड़ेगा। अर्थात स मय की एकता, घटना की एकता, स्थान की एकता के महत्त्वपूर्ण स्थान दे दिया है।

5 भाषाशैली :-- नाटक दृश्य काव्य होने के कारण उसके शब्दों और वाक्यों में स्पष्टता होनी चाहिए। महत्वपूर्ण बात यह है कि शब्दों और वाक्यों की प्रभावशिलता संपूर्ण नाटक में अनिवार्य है। क्योंकि कथोपकथन की शैली ही प्रधान शैली है। नाटक में भाषाशैली तभी प्रभाव ला सकेगी जब भाषा सरल, अलंकृत, लाभाणिक, मुहावरेदार और प्रभावपूर्ण होगी | संवादों में बातचीत की तरह भाषा स्वाभाविक होनी चाहिए।

6 अभिनय :-- संस्कृत आचार्यों के अनुसार अभिनय नाटक का अभिन्न अंग है। अभिनय का अर्थ है 'अपने भावों को अन्य लोगों तक पहुंचाना' अर्थात दूसरों का अभिनय करना' अभिनय नाटक की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। 'नाट्यशास्त्र' में भरतमुनि ने अभिनय के चार प्रकार माने है--

आंगिक अभिनय **--** इसमें शरीर के विभिन्न अंगो के संचलन द्वारा भाव और कार्य प्रकट किए जाते। इसके तीन प्रकार माने गये है। 1] शरीर 2] मुखज 3] चेष्टाकृत। शरीर के अंगों, जैसे सिर, हाथ, पैर,कटि तथा उपागों, जैसे उँगली, भ्रू, आदि आदि के द्वारा जो अर्थ भाव प्रदर्शन का ढंग है उसे 'शारीर अभिनय'कहते है । मुख की विभिन्न आकृतियों और गतियों से जो अभिनय होता है उसे मुखज तथा विभिन्न कार्यो-जैसे- दौड़ना, टटोलना, तैरना आदि में चेष्टाकृत अभिनय है।

वाचिक अभिनय **–** इसमें पात्रों के संभाषण महत्त्वपूर्ण है। अर्थात पात्रों के बोलने पर अधिक भर दिया जाता है। परिणामस्वरूप वाचिक अभिनय में स्पष्टता आ जाती है। इसके अंतर्गत स्वारशास्त्र, छंद, भाषा-प्रयोग, काकु द्वारा भाव और अर्थ का प्रकाशन होता । कहाँ शुद्ध भाषा का और कहाँ विकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है। तथा किस व्यक्ति को क्या कहकर संबोधित करना चाहिए, यह सब वाचिक अभिनय के अंतर्गत है।

आहार्य अभिनय **–** इसमें वेशभूषा, केशभूषा, पात्रों के रूप, आभूषण और सौंदर्य प्रसाधनों का समावेश रहता है। इसमें विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का, उनके अनुरूप अलंकार धारण करने का विधान है। जैसे– वृद्ध को काठ का डंडा देना, सन्यासियों को भस्म या गेरूएं वस्त्र धारण कराना, विभिन्न प्रदेशों की स्त्रियों के अलग अलग केश, सज्जा, वस्त्र, अलंकार आदि यह सब आहार्य अभिनय के अंतर्गत आता है।
है।

सात्विक अभिनय **--** इसमें कंप, रोमांच, स्वेद (पसीना) स्तंभ आदि द्वारा सात्विक भावों का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें सूक्ष्म अंतस्थ भावों का प्रकाशन है।

7 उद्देश्य:-- भारतीय आचार्यों ने महत्वपूर्ण उद्देश्य रसपूर्ति माना है। इसी के साथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा जीवन की आदर्शों की उपलब्धि को नाटक का उद्देश्य माना है। वैसे तो मनुष्य के जीवन से तीन उद्देश्य बिलकुल जुड़े हुए है-- धर्म ,अर्थ, काम। इन तीनों जीवन के उद्देश्यों को उपस्थित करके पात्रों द्वारा नाटक खेला जाता है। धर्म का प्रसार
करना एवं पालन करना | अर्थप्राप्ति करना और मानव का कार्य इन तिनों उद्देश्यों को लोगों के सामने रखकर जनजागृति या प्रबोधन करना सहज, सुलभ होता है। क्योंकि लोगों में परिवर्तन लाने लिए कुछ महान व्यक्तियों की अभिव्यक्ति भी नाटक का उद्देश्य हो सकता है।

नाटककार जो उद्देश्य सामने रखकर नाटक लिखता है उसे सफल बनाने का प्रयास रंगमंचपर होता है। आजकल आधुनिक नाटकों में ऊपर दिये हुए उद्देश्यों को स्थान नहीं दिया जाता। आजकल के नाटक समाज और जीवन की समस्याओं पर आधारित है तो कुछ केवल अर्थप्राप्ति।

By Dr.Sangita Chitrakoti